BODHI

International Journal of Research in Humanities, Arts and Science

An online, Peer reviewed, Refereed and Quarterly Journal

Vol : 1 No : 4 July 2017 ISSN : 2456-5571

CENTRE FOR RESOURCE, RESEARCH & PUBLICATION SERVICES (CRRPS)

www.crrps.in | www.bodhijournals.com

Vol.1 No. 4 July 2017 e-ISSN: 2456-5571

समकालीन कविता में चित्रित स्त्री संवेदना

डॉ. पी. व्ही. महालिंगे

इतिहास साक्षी है कि स्त्री अनादिकाल से उपेक्षित थी, उपेक्षिता है और भविष्य में भी उपेक्षिता रहने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है। समय चक्र के घूमने के साथ ही स्त्री–जीवन में भी पर्याप्त बदलाव आया है । भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, औद्योगिकरण उपभोक्तावद आदि के आने से न केवल जीवन मूल्यों में परिवर्तन हुआ बल्कि स्त्री जीवन को भी अपने व्यापक प्रभाव क्षेत्र में समेटता चला गया। परिणाम स्वरूप स्त्री की त्रासद स्थिति बद से बदत्तर होती चली गई। पितृसत्ताक समाज समाज में स्त्री को दोहरे मापदंड से गुजरना पडा है । यह आज और जटिल और कुटिल बने हुए दिखाई देते हैं। बावदूज इसके हमारे इतिहास में नारी को बेटी, पत्नी एवं माता के आलावा समाज ने एक पूजनीय स्थान दिया हैं । उसे शक्ति स्वरूपा, शक्तिदायिनी, कल्याणकारीनी एवं देवी स्वरूप कहां गया है । उसकी पूजा अर्चना देवालयों, शुभ त्योहारों एवं दैत्यों के विनाश के लिए की जाती रही है । वैदिक एवं उत्तर वैदिक साहित्य से लेकर आज तक नारी को अनेक नामों से सम्बोधित करते हुए उसे ऊंचे स्थान पर स्थापित किया गया है । वही दूसरी ओर भक्तिकाल में नारी को 'ताड़न की आधिकारी' कहकर उसे पाताल में ढकेल दिया गया है । एक ओर नारी को राजमहलों की रानी बनाया गया हैं तो दूसरी ओर उसे कोठे पर बैठने के लिए मजबूर किया गया है । इन सब के लिए भारतीय वर्णव्यवस्था ही जिम्मेदार है और जो भी आज तक नारियों को समाज ने स्थान दिया है वह उसके हित के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से दिया है ।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और उनकी संवेदना को समझने के लिए उनको दों भागों में रखकर देखा जा सकता है । एक सवर्ण महिलाएँ और दूसरी दलित महिलाएँ । औरतों के संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने कहा है कि भारतीय महिलाएँ दलितों में भी दलित है बावजूद इसके दलित महिलाएँ दलितों में भी दलित है । क्योंकि दलित महिलाएँ और सवर्ण महिलाओं की स्थिति भिन्न हैं । दलित महिलाओं की पीड़ा और सवर्ण महिलाओं की पीड़ा एक समान नहीं हैं । क्योंकि ''तथाकथित उच्च समाज की स्त्रियों को अपने घर की चाहर दीवारी के अन्दर सम्मान न मिलता हो, परंतु उच्च समाज की होने के नाते समाज में उन्हें आदर की निगाह से देखने के लिए मजबूर है । दलित समाज की औरतों को रूप, रंग, गुण, व्यवहार में उच्च वर्णिय औरतों से बीस होते हुए भी उसे आदर नहीं मिलता ।''[1] इसलिए कहां जा सकता है कि सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री की पीडाएँ भिन्न हैं । बावजूद इसके दोनों भी स्त्री होने के नाते कहीं न कहीं संवेदना के स्तर पर उनकी पीड़ा एक है। समकालीन कवियों में अरुण कमल, मंगलेश डबराल, लीलाधर जगुड़ी, चन्द्रकांत देवताले धूमिल, मनमोहन, उदय प्रकाश आदि ने स्त्री जीवन को रेखांकित किया है। नारी अपने परिवार के प्रति कितनी सजग और संवेदनशील होती है। अपने परिवार के सुख में ही अपना सुख खोजती है। इसलिए चन्द्रकांत देवताले 'पर कम खुदा न थी परोसनेवाली' कविता में लिखते हैं–

''पर कम खुदा न थी परोसने वली
बहुत है अभी इसमें
मैंने तो देर से खाया
कहते परोस ते जाती
माँ थी
सब के बाद खाने वाली
जिसके लिए दाल नहीं
देचकी में बची थी हलचल

चुल्लू भर पानी की
और कटोर दान में भाफ़ के चन्द्रमा जैसी
रोटी की छाया थी।''[2]

स्त्री का त्याग अतुलनीय है । वह अपने माँ–बाप को छोड़कर पुरुष की जीन्दगी संवारने उसके घर आती है। जीवन में त्याग कर और जीवन को सभी को समर्पित करने के बावजूद भी वह एक तरह की भटकन महसूस करती है। उसे अपने अस्तित्व का भी भान नहीं रहता है। डॉ. धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' नामक कविता में आज की नारी की संवेदना को अभिव्यक्त किया है–

''क्षण–क्षण पर तुम्हारे साथ
मुझे इतने आकस्मिक मोड लेने पड़े हैं
कि मैं बिल्कुल भूल गई हूँ कि
मैं अब कहाँ हूँ और तुम मेरे कौन हो?''[3]

समकालीन कविता में नारी जीवन, प्रेमिका, सह यात्री, पत्नी, माँ, बेटी, बहन के रूप में ही अभिव्यक्त नहीं हुआ है, बल्कि वर्ग चेतना के सामाज–सापेक्ष सन्दर्भों में उनके शोषित स्वरूपों को भी उजागर किया गया है। ज्ञानेन्द्रपति ने आनी कविता 'पूछती है माँ' कविता में माँ के द्वारा अपने बेटे को प्रत्येक पल जानने, गाछ की शाखा की समान–फूल को पहचानने का जिक है तो 'इंतजार' कविता में उस लड़की का भी जिक है जो आपने शिकार की तलाश में दयनीय है–

''कलकत्ता/कर्जन पार्क/दिन के चार बजे
घुटने मोड़कर बैठी हुई यह लड़की
दिन के अपने पैरों तले आ जाने के इन्ताजार में है
उसके सपाट चहरे पर जल उठेगी उसकी आँखें।
आ जाएगी उनमें वह चमक जो केवल
बुरी स्त्रियों में होती है/और एक बार
फिर/ किसी लोलुप व्याघ्र का शिकार होगी।
अपने विलाप को
मुस्कुराहट में बदलती हुई।''

उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवाद ने स्त्री को एक उपभोग की वस्तु के रूप में माना है। स्त्री का शारिरीक सौन्दर्य और उसका उपभोग ही महत्वपूर्ण रहा है। बाजारवाद के बढ़ते वर्चस्व के कारण आज सौन्दर्य का भी व्यावसायीकरण हो गया है। सौन्दर्य–प्रतियोगिता के नाम पर स्त्री अपना शारिरीक सौदर्य बेचती है। उसके अर्द्धनग्न शरीर को देखकर उसे विश्व–सुन्दरी का खिताब दिया जाता है । पर क्या यह प्रतियोगिता मात्र देखने तक ही सीमित है। या फिर किसी स्त्री को विश्व सुन्दरी का खिताब पाने के लिए कोई और भी मूल्य चुकाना पड़ता है।

बाजार स्त्री को सपने दिखाता है कि वह स्वतंत्र है । उसका सौन्दर्य, उसका शरीर जिसे सीढ़ी बनाकर वह कामयबी हासिल कर सकती है। लेकिन बाजार स्त्री को चमकिला अपमान और जिल्लत की रोटी के आलावा और कुछ नहीं दे सकता है । 'जिल्लत की रोटी' में मनमोहन लिखते हैं–

''इस निष्ठुर संसार में
इसे अपनी मुस्कान का भरोसा
शुरू से बहुत था
जैसे वही चारों ओर फैले
चमकीले अपमान का थामे रहेगी।''[4]

कविने यहाँ ग्लैमर की चकाचौध को चमकीला अपमान कहकर सौन्दर्य प्रतियोंगिता की असलियत को सब के सामने उघाडकर रख दिया है।

समकालीन हिन्द कवित्रियों में अनामिका, चन्द्रकांता, कात्यायनी एवं प्रभा खेतान, सुशीला टाकभैरे, निर्मला पुतुल जैसी कवियत्रियों ने अपने अपने जीवन की विविध अनुभूतियों के साथ–साथ नारी जीवन के यथार्थ का और उसकी संवेदना को अभिव्यक्ति दी है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण ,निजीकरण,साम्राज्यावाद और नव उपनिवेशवाद के दौर में उनके जीवन पर पड़े विभिन्न प्रभावों को इस काल की कविता में देखा जा सकता है। नारी के इसी रूप को कात्यायनी ने अपनी कविता 'औरत और घर' में उजागर किया है।

''घर को हिफाजत के साथ घर बनाए हुए,

उसे भूतों का डेरा बनने से जतनपूर्वक बचाते हुए
घर में सुरक्षापूर्वक
होने का एहसास वह एक
बेहद नशीली शराब की तरह पीती रही ।''[5]

समकालीन कविता में अनामिका का नाम बहुचर्चित है । अनामिका ने 'खुरदुरी हथेलियाँ' संग्रह की कविता में स्त्री को लेकर जो लिखा है वह स्त्री विमर्श को साकार करता है। ''स्त्री विमर्श एक नारीवादी सिद्धान्त है जो स्त्री केन्दित ज्ञान की चर्चा करता है।''[6]

संग्रह का पहला खंड है 'अन्तःपुरम्' यह खास तौर पर स्त्रियों पर केन्द्रित है । अन्तःपुरम् उसे कहते हैं जहाँ महलों भवनों के भीतरी भाग में स्त्रियाँ बंद रहती हैं। इसी खंड की पहली कविता है 'स्त्रियाँ'' इस कविता में कवयित्री ने कमाल के उपमान जुटाएँ हैं। स्त्री को पढ़ाया गया जैसे बच्चों की फटी कापियों के कागज को चना जोर गरम के लिफाफे बनाने के पहले, आँखों के आगे आ जाने से बेवजह पढ़लिया जाता है। इसलिए इस कविता में लेखिका इंसानियत से पेश आने की बात करती है।

''एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान है
हमें कायदे से पढ़ो एक–एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बीए के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन
देखो तो ऐसे
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती हुई आग।''[7]

स्त्री की महानता और उसकी विवशता के बारेमें अरविन्द जैन ने लिखा है कि ''एक स्त्री तो घर में रहती है, समय पर खाना पकाती है, बच्चे पालती है, रात में पति को संतुष्ट करती है, उस स्त्री को महान कहा जा सकाता है । जिस परिवार का स्वामी पुरुष है दूरी ओर साझी संपत्ति जिसमें कॉलगर्ल, वेश्याएँ आदि आती है। अक्सर उन्हें आजद स्त्री की कोटि में रखा जाता है। आजद स्त्री मानो कुलटा स्त्री। पुरुष पचास औरतों के साथ संबंध रखकर भी अच्छा कहलाता है अपने घर लौट सकता है। स्त्री एक प्रेम करके भी चरित्रहीन कहीं जा सकती है।''[8]

इस पितृसत्तक समाज में कोई स्त्री पुरुष से कितना भी प्रेम करने के बावजूद भी पुरुष उसे उतना सम्मान नहीं दे पाता है । जो एक सामाजिक रिश्ते को मिलना चाहिए । यहाँ भी स्त्री अपने आप को उपेक्षित ही पाती है। स्त्री की इसी पीड़ा को प्रभा खेतान ने अपनी एक कविता में बयान किया है–

''मैंने तुम्हे प्यार किया है
सहास और निडरता से
मैं उन सब के सामने खड़ी हूँ
जिनकी आँखें हमारे संबंधों पर
प्रश्नवाचक मक्खियों की तरह मंड़राती है।''[9]

सवर्ण समाज के पुरुषों ने दलितों की महलाओं के साथ बहुत क्रूर व्यवहार किया हैं । उनके साथ काम के स्थान पर, खेतों–खलिहानों में, ईंट के भट्टे पर उनके साथ बलात्कार होते रहे हैं । सवर्ण समाज की सेवा करने के बावजूद इन औरतों को सरेआम नोचकर उन्हें निरवस्त्र किया जाता रहा हैं । सवर्णों ने कभी दलित महलाओं को प्रेम की नजर से नहीं बल्कि अपनी हवस को मिटाने की दृष्टि से देखा हैं। जब लड़की बड़ी होकर अपनी मां के साथ उसका हाथ बटाने के लिए काम पर जाती है, उस समय गिद्ध समाज की नजरे उसके यौवन को भोगने के लिए पिपासु रहती है, इन परिस्थितियों में उसे मानसिक प्रताड़ना सहन करनी पड़ती है । वह सारे अन्यायों को सहकर भी कुछ नहीं कर पाती। इस प्रकार शोषण की शिकार नारी को तिल–तिल होकर मरना पड़ता हैं। कवि वाल्मीकि 'घृणा और प्रेम कहॉ से शुरू होता है'? कविता में लिखते है –

''याद करो
उस बेटे का चेहरा
जिसके सामने फेंक दिये हों
नोच–नोच कर
उसकी मॉ के वस्त्र
याद करों

उस बूढ़े बाप का चेहरा
जिसने खेत जोता दिन भर
काटी फसल
बुहारा ऑगन
मिली गालियॉ–दुत्कारा जिसे
कठिन श्रम के बदले,
जिसकी बढ़ती बेटी के जिस्म पर
टिक जाती हैं गिद्ध नजरें
याद करो उस बाप का चेहरा ।''[10].

निर्मला पुतुल ने आदिवासी स्त्री का जीवंत दस्तावेज अपना काव्य संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते है शब्द' में किया है। इस संग्रह में वह अपने स्त्री होने के अस्तित्व को तलाश करती नजर आती है। वह पुरुष प्रधान समाज में घर, परिवार, प्रेम, रिश्ते–नाते सम्बन्धों में अपने स्थान को तलाशती है। वह सदियों से किसी न किसी पुरुष पर निर्भर रही है। शादी के पहले माता–पिता पर शादी के बाद पति या बेटे पर आश्रित रही है। इसलिए लिए उसे प्रश्न पडता है कि आखि रवह है कौन? उसका स्थान क्या है? उसका आस्तित्व क्या है? इस दर्द, पीडा, वेदना को पूरी संवेदना के साथ अपनी कविता में अभिव्यक्त करती है–

''क्या तुम जाने हो
अपनी कल्पना में
किस तरह एक ही समय में
स्वं को स्थापित और निर्वासित
करती है एक स्त्री?''[11]

संदर्भ

1. दलित चेतना : सोच – संपा. रमणिका गुप्ता – पृ. 144
2. उजाड़ में संग्राहलय – चन्द्रकांत देवताले पृ. 77
3. रचनाकार धर्मवीर भारती : एक पुनर्मूल्यांकन– डॉ. नवीन नंदवाना पृ.50
4. जिल्लत की रोटी' – मनमोहन पृ. 79
5. कात्यायनी, इस पौरुष में, पृ. 67
6. स्त्री विमर्श –विनयकुमार पाठक – भावना प्रकाशन दिल्ली पृ. 211
7. खुरदुरी हथेलियाँ – कविता– स्त्रियाँ – अनामिका – राधृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 13
8. स्त्रीत्ववादी विमर्श :समाज और साहित्य – क्षमा शर्मा पृ.101
9. अपरिचित उजाले – प्रभा खेतान पृ. 10
10. बस्स ! बहुत हो चुका – ओमप्रकाश वाल्मीकि – पृ. 43
11. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द – निर्मला पुतुल – प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली पृ. 7
12. डॉ. पी. व्ही. महालिंगे हिन्दी विभाग रामनारायण रुईया महाविद्यालय, माटुंगा मुंबई 19